आखिर 'बालक' कौन?

कानूनी उलझनें और बच्चों का भविष्य

कंचन शर्मा

किशोर न्याय अधिनियम, 2000 पर छिड़ी मौजूदा बहस ने एक बार फिर विवाद खड़ा कर दिया है। भारत में बच्चों के अधिकारों के संरक्षण के लिए अनेक कानूनी प्रावधान हैं। समस्या यह है कि हरेक कानून बच्चे को अपने ढंग से परिभाषित करता है। इसके चलते बाल अधिकारों के संरक्षण में समस्याएं आती हैं। यह लेख कानूनी विसंगति और इसके निहितार्थों पर चर्चा करता है।

प्रगतिशील भारत में सतत विकास, महिला अधिकार, पर्यावरण संरक्षण आदि जैसे ज्वलंत मुद्दों की ही भांति बाल-सुरक्षा का मुद्दा भी बहस का विषय बना हुआ है। भावी पीढ़ियों के लालन-पालन और शिक्षा से किसी भी देश का भविष्य तय होता है। अतः उनके सकारात्मक विकास व गरिमापूर्ण जीवन की सुरक्षा हेतु राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारें एवं अनेक संगठन प्रयासरत हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बाल अधिकार संविदा जहां इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है वहीं राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय संविधान का अनुच्छेद 39(च)[1], अनुच्छेद 45[2], अनुच्छेद 21(क)[3] आदि इसके उदाहरण हैं। परन्तु बाल संरक्षण हेतु सभी प्रयासों का आधार 'बालक' की परिभाषा अर्थात् बालक किसे माना जाए, स्वयं में विवादास्पद विषय बना हुआ है। क्या बालक वह है जो संविधान में निर्धारित आयु वर्ग में आता है? यदि इसे आधार मानें तो प्रत्येक राष्ट्र का संविधान इसकी अलग-अलग परिभाषा करता है। क्या बालक या बचपन की अवधारणा के कुछ सार्वभौम मानदण्ड हो सकते हैं या यह अवधारणा बालक के सामाजिक, आर्थिक, लैंगिक, सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ी हुई है?

आखिर बालक कौन है? इस विषय पर विचार करते हुए सवाल उठता है कि यह एक राजनीतिक प्रश्न है या सामाजिक प्रश्न है? या इस प्रश्न की जड़ें समाज विशेष के संदर्भों से जुड़ी हैं? हाल में जुवेनाइल जस्टिस एक्ट 2000 पर कैबिनेट के फैसले के पश्चात् यह प्रश्न और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि हम 'बालक' को किस संदर्भ में समझ रहे हैं। जब इस प्रश्न की महत्ता को शिक्षा के क्षेत्र में खोजते हैं तो पाते हैं कि शिक्षा की समस्त प्रक्रियाओं के केन्द्र में बालक ही होता है फिर चाहे शिक्षा नीति निर्माण की बात हो या शिक्षण प्रक्रिया की।

आखिर 'बालक' कहा किसे जाए, यह प्रश्न न केवल भारत में बल्कि समस्त विश्व में एक विवाद का विषय बना हुआ है। यदि केवल भारत पर नजर डालें तो यह उभरकर आता है कि भारत में प्रत्येक स्थान पर बालक को अलग-अलग तरह से परिभाषित किया गया है। उदाहरण के लिए, जनगणना करते समय बालक उस व्यक्ति को माना जाता है, जो उस समय 14 वर्ष से कम आयु का हो परन्तु बाल विवाह निषेध कानून एक लड़के को 21 वर्ष व एक लड़की को 18 वर्ष पूरी न होने तक बालक मानकर उनके विवाह का निषेध करता है। हालांकि यहां पर भी एक लड़के व लड़की को बालक के रूप में देखने का निर्धारित स्तर अलग-अलग है। इसी प्रकार यदि खनन कानून पर चर्चा की जाए तो वह कहता है 18 वर्ष से कम आयु का कोई भी व्यक्ति किसी भी खनन कार्य में काम करने योग्य नहीं माना जाएगा। वहीं दूसरी ओर बाल मजदूर प्रतिबंध कानून कहता है कि 14 वर्ष से कम आयु वाले व्यक्ति को बालक मानकर किसी भी कार्य में नहीं लगाया जाएगा। हमारे संविधान का अनुच्छेद 45, 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा की बात करता है वहीं अनुच्छेद 326, 18 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों को मताधिकार देता है। मताधिकार से वंचित करने का मूल तर्क अपरिपक्वता है। ऐसी स्थिति में बचपन की जो अवधारणा बनती है उसकी सीमा 18 वर्ष तक जाती है परन्तु अनुच्छेद 45 मात्र 14 वर्ष के बालकों को ही इस दायरे में शामिल करता है। इन प्रावधानों से स्पष्ट होता है कि इसे लेकर

लेखक परिचय

केन्द्रीय शिक्षण संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली बीएड एवं एमएड करने के बाद हेमवती नन्दा बहुगुणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड में असिस्टेंट प्रोफेसर के तौर पर कार्यरत हैं।

अलग-अलग मत मौजूद हैं। परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ की बाल अधिकार संविदा बालक को जन्म से 18 वर्ष आयु में परिभाषित करती है और इस पर भारत सरकार द्वारा 1992 में हस्ताक्षर किए जा चुके हैं। लेकिन हमारे संविधान में राज्य द्वारा अपनी सहूलियत व उपयोगिता के अनुसार बालक को अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया गया है। एक बालक काम करने के लिए 14 वर्ष के पश्चात् वयस्क बन जाता है परन्तु मताधिकार के लिए इसे बालक ही गिना जाता है। खनन में कार्य करने के लिए उसे 18 वर्ष आवश्यक हैं क्योंकि वहां भारी कार्य करने के लिए आवश्यक शारीरिक क्षमता जरूरी है परन्तु शिक्षा का अधिकार 6 से 14 वर्ष तक ही सीमित कर दिया जाता है। इस प्रकार के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान में बहुत ही चालाकी से बालक को परिभाषित किया गया है जो कि राज्य के दोहरेपन को जाहिर करता है और विवाद को भी बढ़ाता है।

यदि आयु का विवाद सुलझा भी लिया जाए तो भी 'बालक' की समझ को लेकर एक अन्य विवाद है। वह यह कि भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में बालक किसे कहा जाए? यह प्रश्न इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर 'बालक' की जो परिभाषा करता है, वह मात्र आयु के संदर्भ में बालक को परिभाषित करता है, जो सार्वभौमिक करने व समझने की दृष्टि से बहुत सरल है। इस परिभाषा में बालक व बचपन की अवधारणा एक निश्चित मॉडल के आधार पर है। जबकि विश्व के कई देशों में बालक व बचपन की अवधारणा का निर्धारण मात्र आयु न होकर जाति, समुदाय, लिंग विशेष के आधार पर निश्चित किया जाता है। इस संदर्भ में वसन्ता (2004) अपने लेख 'बचपन, काम और स्कूलिंगः एक चिंतन' में बताती हैं, ''1989 में संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार कन्वेशन पारित किया गया। जिस पर भारत सहित 190 देशों ने हस्ताक्षर किए। इस कन्वेशन में 18 साल से कम उम्र के व्यक्ति को 'बच्चा' के रूप में परिभाषित किया गया है। इस चर्चा से स्पष्ट है कि 'विशेषज्ञ' शहरी बचपन के एक खास मॉडल को ध्यान में रखते हैं। यह ऐसा मॉडल है जो घर के सुरक्षित वातावरण पर आधारित है। उसमें एक पत्नी या मां की लगातार उपस्थिति और दफ्तरों, स्कूलों और दुकानों की श्रृंखला के अनुरूप एक दैनिक रूटीन अनिवार्य है।'' परन्तु भारत जैसे देश में जहां हर स्तर पर बहुलता है वहां बचपन व बालक भी समान न होकर भिन्नता लिए हुए है। जैसे, एक आर्थिक स्तर पर सम्पन्न व कमजोर परिवारों के बच्चों में यह फर्क और बढ़ जाता है। क्योंकि एक गरीब परिवार के बच्चे के लिए यह बहुत सामान्य-सी बात है कि वह परिवार के जीवन निर्वाह हेतु घरेलू व्यवसाय व घर के अन्य कामों में मदद करे। ऐसी स्थिति में बालक द्वारा किए इन कामों को बाल श्रम में नहीं गिना जा सकता। ऐसे परिवारों के बच्चे माता-पिता की अनुपस्थिति में घर के काम करने, घर की देखभाल व छोटे भाई-बहनों की जिम्मेदारी के प्रति जल्द ही सजग हो जाते हैं। उनके लिए यह बहुत सामान्य बात होती है कि स्कूल से आने के बाद खाना बनाएं, सफाई करें, शाम को माता-पिता के साथ बाजार में सब्जी बेचने या रेडी पर सामान बेचने में मदद करने भी जाएं। वे हर वह कार्य करते हैं जो वयस्क करते हैं। इस संदर्भ में मात्र 'आयु' के आधार पर बालक कह देना व उसकी अपरिपक्वता साबित कर देना या इस तरह के कार्यों को बाल श्रम की श्रेणियों में डाल देना कितना उचित होगा? वहीं अत्यन्त धनी परिवार के बच्चों को अपनी निजी जिम्मेदारियों का भी स्वयं निर्वाह नहीं करते। इसी प्रकार भारत जैसे जेण्डर विभक्त समाज में एक लड़के व लड़की के मध्य भी विवाद है। क्योंकि एक ही परिवार में एक लड़के को अधिक आयु तक बालक के रूप में देखा जाता है वहीं लड़की से अपेक्षा की जाती है कि वह 10-12 साल की होने पर कम बोले, कम हंसे, सभ्य वयस्क की भांति व्यवहार करे, जिद्द न करे, अपने छोटे भाई-बहनों के प्रति मातृत्व की भावना व दया-प्रेम दिखाए। वहीं एक लड़के से वयस्क की भूमिका निर्वाह करने की उम्मीद 15-18 वर्ष के बाद की जाती है। जैसा कि कांचा इलैया (1995) ने अपनी पुस्तक 'मैं हिन्दू क्यों नहीं' में कुरुमा समुदाय में लड़के और लड़कियों के जातीय प्रशिक्षण का जिक्र करते हुए बताते हैं, ''इस समुदाय के छोटे-छोटे लड़कों को भेड़ पालन गतिविधियों की भाषा सिखाई जाती है। वे सीखते हैं कि अलग-अलग भेड़ों को कैसे पहचाना जाता है, भेड़ों को किस तरह की बीमारियां हो सकती हैं, उन बीमारियों को कौनसी वनस्पतियों से इलाज किया जा सकता है, भेड़ों के प्रसव के समय क्या करना चाहिए आदि। लड़कियों को सिखाया जाता है कि बच्चों की देखभाल कैसे करें, मिर्च की पिसाई कैसे होती है, धान कूटना, ऊन से धागा बनाना, मिट्टी के बर्तन मे खाना कैसे बनाया जाता है आदि''। इलैया के इस विवरण से यह पता चलता है कि कैसे एक खास जाति/वर्गीय समूह में लैंगिक भूमिकाओं के आधार पर बालक को अलग-अलग रूप से तैयार किया जाता है।

बालक की परिभाषा केवल नीतिगत दस्तावेजों में परिभाषित करने की ही समस्या नहीं है बल्कि एक शैक्षिक समस्या भी है। शैक्षिक विमर्श में यह प्रश्न और इससे संबंधित विवाद व इससे संबंधित चुनौतियों को समझा जाना अति आवश्यक हो जाता है। क्योंकि इससे बच्चों को मिलने वाले अधिकार प्रभावित होते हैं। जैसे, शिक्षा के अधिकार को 0-18 वर्ष तक किए जाने की आवश्यकता है ताकि सभी को शिक्षा का अधिकार प्राप्त हो सके। वहीं दूसरे स्तर पर शैक्षिक संदर्भ व शिक्षक वर्ग के लिए बच्चे को उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से समझे जाने की महत्ता पर भी बल देता है। यदि शिक्षा के लिहाज से आयु के मसले को सुलझा भी लिया जाए तब भी एक शिक्षक के लिए बच्चों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझे बिना शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता। एक शिक्षक के सम्मुख कई ऐसी परिस्थितियां आती हैं जब वह इस समझ के आधार पर कई अच्छी परिस्थितियों का निर्माण कर सकता है।

एक शिक्षक जब कक्षा के बालकों व उनकी समस्याओं को उनके संदर्भ विशेष के आधार पर समझ पाने में समर्थ हो सकेगा तभी बालक शिक्षक से अपनी समस्याओं पर खुलकर चर्चा करने में सहज हो पाएंगे। स्कूली अनुभवों के दौरान बालकों के सम्मुख कई ऐसी समस्याएं आती हैं जिनका सरोकार उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से होता है परन्तु इन समस्याओं का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव उनके स्कूली जीवन पर पड़ रहा होता है। ऐसे में शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह बालक व उनकी जरूरतों को उनके संदर्भ से समझे ताकि एक बेहतर शिक्षण वातावरण का निर्माण किया जा सके। इस प्रकार के वातावरण निर्माण के लिए आवश्यक है कि पूर्व-शिक्षण व सेवारत प्रशिक्षण दोनों में 'बालक' की समझ के दृष्टिकोण पर खुलकर चर्चा की जाए व बालक व उसकी समस्याओं को समझने के 'आयु' के संदर्भ (जो समान्यतः मनोविज्ञान की कक्षा में बताया जाता है कि बालक का विकास किस प्रकार होता है) के साथ ही उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व लैंगिक संदर्भों के प्रति भी संवेदनशील किया जाए ताकि शिक्षक वर्ग बालक को अनेक आयामों से समझ पाने में समर्थ हो सके।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि शैक्षिक विमर्श की दृष्टि से 'बालक किसे कहा जाए' एक जटिल मुद्दा है चूंकि एक स्तर पर यह विवाद नीतिगत दस्तावेजों में बच्चे को परिभाषित करने का है तो वही दूसरे स्तर पर यह बालक की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की समझ से जुड़ा मसला भी है। यह प्रश्न संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावी करने के दृष्टिकोण से भी अपना महत्त्व रखता है। परन्तु यहां यह आवश्यक है कि इस प्रश्न की तलाश मात्र एक या दो पहलू के आधार पर न की जाए बल्कि बालक व बचपन के सभी आयामों को समझने का प्रयास किया जाए। चूंकि 'बालक' की समझ का आधार ही बाल अधिकार के निर्माण व संरक्षण एवं बालकों के प्रति व्यवहार करने का आधार बनता है। सभी देशों की परिस्थितियों को एक खाके में डालकर हम सुविधाजनक अधिकार व परिभाषाओं का तो निर्माण कर सकते हैं परन्तु प्रभावी अधिकारों व वातावरण का निर्माण इस प्रश्न की संपूर्ण समझ ही प्रदान कर सकती हैं। ◆

टिप्पणी

1. बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।
2. राज्य प्रारम्भिक शैशवावस्था की देखरेख और सभी बालकों को उस सीमा तक जब तक कि वे छः वर्ष कि आयु पूर्ण न कर ले शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रयास करेगा।
3. राज्य छः से चौदह वर्ष कि आयु तक के सभी बच्चे को अनिवार्य व निःशुक्ल शिक्षा इस प्रकार प्रदान करेगा जिस प्रकार से राज्य विधि के अधीन निर्धारित करें।

संदर्भ

Iliah, K. (1995). Why I am not a hindu. Calcutta: Samya.

UNICEF 2009. Convention on the rights of the child. (Online). Retrieved from: http://www.unicef.org/crc.

Vasanta, D. (2004). Childhood, work and schooling: Some reflections. Contemporary Education Dialogue, 2(1), 5-29.